

लुप्त सरस्वती सुप्त सरस्वती

ओम थानवी

मूअनजो-दड़ो के खण्डहरों में विचरण के बाद सुस्ताते हुए मैं सिंधु सभ्यता पर उपलब्ध ज्ञान-धारा की कुछ पेचीदगियों पर सोच रहा था। यह छोटा-सा-ब्रेक जरा पूरा हो जाय। तब मूअनजो-दड़ो से पाँव वापस मुड़ें।

पिछली दफा मैंने उन किताबों का जिक्र किया था जिन्होंने मेरी जानकारी तो बढ़ाई, लेकिन कई गुत्थियां भी सामने रख दीं। सिंधु सभ्यता के इतिहास की पड़ताल के सिलसिले में जो सवाल मन में उठे, उनके साथ एक मामले में यह पसोपेश भी शामिल थी कि क्या साहित्य को इतिहास निर्धारण का निर्णायक आधार माना जा सकता है। मुश्किल शायद तब होती है जब धार्मिक साहित्य के हवालों को विद्वान लोग हू-ब-हू इतिहास की घटनाएं मानकर विराट स्थापनाएं कर देते हैं, जो विशेषज्ञों को भी एक कभी न खत्म होने वाली बहस में उलझाए रखती हैं। सिंधु यानी हड़प्पा सभ्यता की गुत्थियों को ऋग्वेद की ऋचाओं से खोलने की कोशिश एक ऐसा ही उद्यम है।

अगर अपने प्रमाणों के जरिए साहित्य-चित्रण उन्नीसवीं सदी में इतिहास को रास्ता दिखा रहा होता तो बात कुछ समझ में आ सकती थी। तब तक पुरातत्त्व का विज्ञान सामने नहीं आया था। भारत के पहले पुरातत्त्व महानिदेशक लॉर्ड कनिंगम ने जब हड़प्पा में कदम रखा, तब तक मैक्स म्यूलर यूरोप में बैठे-बैठे ऋग्वेद का काल निर्धारण शुरू कर चुके थे। लेकिन आज इतिहास खोजते वक्त पुरातत्त्व के उपलब्ध प्रमाणों को केंद्र में रखा जाता है। इतिहास लेखन साहित्य जैसा रचनाधर्मी काम नहीं है। इतिहास में कल्पना और आग्रहों के समायोजन की गुंजाइश ही नहीं है। उसे प्रमाण चाहिए।

हिंदी में सिंधु घाटी या हड़प्पा सभ्यता पर पुरातत्त्व या इतिहास के लोगों ने कम लिखा है, पर साहित्य के लोगों ने इसमें बड़ी दिलचस्पी ली है। इसमें कोई हर्ज की बात न होती अगर अपनी जानकारियों में उन्होंने पुरातत्त्व के उपलब्ध ज्ञान को समाहित कर लिया होता। पुरातत्त्व का लाभ न उठा पाने से हिंदी में सांस्कृतिक इतिहास की चर्चा अप्रामाणिक ही नहीं, कहीं-कहीं नितांत काल्पनिक हो गई है। जैसे, आर्य-आक्रमण की कथा पुरातत्त्व की खोज से खारिज की जा चुकी है। लेकिन पुस्तकों के नए से नए संस्करण में आक्रमण के ब्योरों में हमारे यहां कोई संशोधन नहीं किया जाता। यह भी नहीं बताया जाता कि ऋग्वेद का वक्त तय करना आज भी सबसे बड़ी चुनौती बना हुआ है।

कहते हैं कि मनुष्य अपने काल के विवेक जितना ही विवेकवान होता है। लेकिन अपने काल-बोध से पीछे जाने- और दूसरों को वहां ले जाने- को आप क्या कहेंगे ?

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के संस्कृति-बोध का मैं हमेशा कायल रहा हूं। १९६६ में, जब वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय के कला व स्थापत्य विभाग के अध्यक्ष थे, उन्होंने भारत के विभिन्न युगों के कला इतिहास पर एक विशद ग्रंथ (भारतीय कला) लिखा। इसमें 'सिंधु घाटी की कला' अध्याय कला-विवेचन में, खासकर भाषा की दृष्टि से, अनुपम है। क्योंकि मैंने मूअनजो-दड़ो देखा है, मैं जानता हूं कि उनके कई ब्योरे सही नहीं हैं, जैसे यह कि नगर के "मुख्य राजमार्ग" पर "कई गाड़ियां एक साथ चल सकती हैं"। पर इतनी गहराई में जाने का कोई औचित्य नहीं होगा। खास बात यह है कि इसी अध्याय में सिंधु सभ्यता के साथ उन्होंने ऋग्वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, पुराण और कौटिल्य अर्थशास्त्र तक के हवाले स्मरण किए हैं। हड़प्पाई संस्कृति के इतिहास से इनकी संगति नहीं बैठती।

वैदिक और हड़प्पा सभ्यता में वे इस विवाद में नहीं पड़ते कि दोनों में कौन-सी सभ्यता पहले है, कौन-सी बाद में। वे जैसे बीच का रास्ता निकालते हैं। उनकी स्थापना है कि दोनों सभ्यताएं "सहवासिनी" के रूप में एक साथ पनपीं। उनके मुताबिक सिंधु या हड़प्पा सभ्यता "असुरों की संस्कृति" थी देव और असुर हजारों साल तक एक दूसरे से मिलते-जुलते रहे, आपस में शादियां कीं। उनमें परस्पर संघर्ष भी हुआ।

मूअनजो-दड़ो की बेशुमार मुहरों पर अंकित एक सींग वाले रहस्यमय पशु की पहचान वासुदेवशरण ऋग्वेद के 'शृंगवृष' से करते हैं। वेद मंत्रों का हवाला देते हुए पशु को रुद्र यानी इंद्र से जोड़ते हैं, पशु के सामने रखे

‘स्तंभ’ को वे रुद्र-ध्वज ठहराते हैं, फिर स्तंभ के एक भाग को शिव के त्रिशूल की अनुकृति बताते हुए रुद्र-शिव पूजा विधान की स्थापना कर देते हैं। वे यह बताते हैं कि ऋग्वेद में ९९ पुरों का जिक्र आता है और कहते हैं कि “इतने ही स्थान” सिंधु सभ्यता की “खोज में मिल चुके हैं।”

कहना न होगा, पुरातत्त्व में इन स्थापनाओं की कहीं पुष्टि नहीं होती। इसलिए इतिहासकार भी ऐसा नहीं मानते।

उद्भट विद्वान रामविलास शर्मा ने ऋग्वेद की गहन मीमांसा की है। लेकिन हड़प्पा सभ्यता के मामले में उनकी स्थापना बहुत कल्पनाशील है। वे हड़प्पा और वैदिक सभ्यता को एक नहीं बताते, न डॉ. अग्रवाल की तरह दोनों सभ्यताओं का गठजोड़ बिठाते हैं। वे वैदिक सभ्यता को सबसे आगे निकलकर हड़प्पा सभ्यता से भी पुराना ठहराते हैं: “वैदिक काल पहले है, हड़प्पा काल बाद को है...।” (इतिहास दर्शन) इसका “प्रमाण” वे ऋग्वेद में जगह-जगह वर्णित सरस्वती को बताते हैं जो वहां ‘वेगवती धारा’ है। हड़प्पा सभ्यता के हास-काल में सरस्वती सूख गई इसलिए, उनके मुताबिक, हड़प्पा युग वैदिक युग के बहुत बाद में हुआ।

काल निर्धारण के झमेले में वे ज्यादा नहीं पड़ते- “सारस्वत क्षेत्र से ऋग्वैदिक सभ्यता का लोप होने पर कितने समय बाद वहां हड़प्पा सभ्यता का निर्माण आरंभ हुआ, यह कहना कठिन है।” लेकिन उसी किताब में वे यह भी कहते हैं कि “ऋग्वेद की रचना ईसा से पांच हजार साल पहले हुई हो, यह बिलकुल संभव है।” इस हिसाब से ऋग्वेद की रचना हड़प्पा काल में हुई, न कि उससे पहले। फिर वे उसी स्थापना पर आ जाते हैं कि पहले “ऋग्वैदिक सभ्यता का विनाश हुआ”! यानी वह हमारी सबसे प्राचीन सभ्यता थी।

सरस्वती के अस्तित्व के ही अभी पुख्ता प्रमाण मिलने बाकी हैं, पर रामविलास जी वैदिक सभ्यता के विनाश का कारण सरस्वती में आई बाढ़ को मानते हैं। फिर कहते हैं कि “कुछ हजार साल बाद उसी की (सरस्वती की) जलहीनता से हड़प्पा सभ्यता का हास हुआ।” यानी सरस्वती की वजह से दो महान सभ्यताएं उठ गईं, कारण चाहे बाढ़ रहा हो या सूखा। उनके मुताबिक, रहीं दोनों सारस्वत सभ्यताएं।

असलियत यह है कि पिछले तीस वर्षों में पाकिस्तान में बलूचिस्तान और सूबा सरहद की खुदाई ने पुरातत्त्व का नक्शा बदल दिया है। यहीं पर नव-पाषाण युग में कोई नौ हजार साल पहले की सिंधु या हड़प्पा सभ्यता के शुरुआती दौर के प्रमाण मिले हैं। मगर इन प्रमाणों में कहीं भी धातु और पहिया नहीं है और पालतू घोड़ा तो दूर वहां जंगली घोड़े तक के निशान नहीं हैं। जबकि ये तीनों चीजें- धातु, आरेदार पहिया और घोड़ा- ऋग्वेद में अहम हैं। जब तीनों चीजें बाद में विकसित हुई हैं तो इनकी सभ्यता का काल हड़प्पा काल से पुराना कैसे हो सकता है? शायद इसीलिए कुछ विद्वान वैदिक काल को सिर्फ परवर्ती प्रौढ़ हड़प्पा काल से जोड़ने की कोशिश करते हैं। रामविलास जी सरस्वती की वेग-धारा के सहारे वैदिक सभ्यता को हजारों साल पीछे ले गए, जाहिरा तौर पर पुरातात्विक प्रमाणों की धारा के विरुद्ध। उनका जैसे यह सूत्र-वाक्य है: “बहुविध प्रमाण ऋग्वेद में विद्यमान हैं।”

कोई गहराई में जाता चला जाए तो वेदों के प्रमाण इतने बहुविध हैं कि वह आर्य-भूमि की तलाश में सरस्वती क्या, उत्तरी ध्रुव तक जा सकता है। जैसे अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ‘द आर्किटिक होम इन द वेदाज’ में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक चले गए थे। जलवायु का चित्रण करने वाले ऋग्वेद के एक श्लोक के आधार पर उन्होंने आर्यों का मूल निवास उत्तरी ध्रुव के पास बताया था। पर उस वक्त ज्ञान-विज्ञान इतना आगे नहीं बढ़ा था। रामविलास जी ने जो स्थापना की, उस वक्त तो हिंदी आलोचना में उत्तर-आधुनिकता की बातें होती थीं।

इस प्रसंग में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का जिक्र भी मौजूं होगा। घुमकड़ शास्त्र के रचेता के रूप में भी और हिंदी साहित्यकारों में सबसे पहले सिंधु घाटी पर आर्य-आक्रमण की स्थापना करने के नाते भी। उन्होंने ऋग्वेद के हवाले से “बाहर से आए पशुपाल” आर्यों को हड़प्पा सभ्यता के संहार की वजह बताया। उनका कहना था कि मोहनजदड़ो-हड़प्पा जैसे नगरों का नाश कर जीती हुई भूमि को आर्यजनों ने आपस में बांट लिया और उसे “गोचर भूमि” में परिणत कर दिया (ऋग्वैदिक आर्य)। राहुल जी की सबसे मजेदार स्थापना यह रही कि वेद में जो “दिव्य सोम” है, वह “वस्तुतः भांग” है।

आर्यों के कल्पित आक्रमण की इस चर्चा और वैदिक ऋषियों को सोम-रस के नाम से भांग पीने वाला बताने से रामविलास जी बहुत त्रस्त हुए। उन्होंने खीझ कर यही नहीं कहा कि राहुल जी में “विवेक की अपेक्षा कल्पनाशीलता प्रबल थी”, बल्कि राहुल जी के “इतिहास बोध” को उन्होंने साम्राज्यवादियों को लाभ पहुंचाने वाला करार दे दिया: “उन्हें (अंग्रेजों को) यह कहने का मौका मिला कि हमीं ने तुम्हारी सभ्यता का नाश नहीं किया। हमसे पहले आर्यों ने यहां की सभ्यता का नाश किया था।”

अभी कोई छह साल पहले हमने 'जनसत्ता' में रामविलास जी के साथ प्रकाश मनु की एक लंबी बातचीत का अंश प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने आर्यों को बाहरी और आक्रमणकारी ठहराने के लिए राहुल सांकृत्यायन- और 'मुर्दों का टीला' लिखने वाले रंगेय राघव को भी- "नस्लवादी" करार दे दिया था! वासुदेवशरण अग्रवाल उनके कोप से शायद इसलिए बच गए क्योंकि उन्होंने देव-असुर संघर्ष को भीतरी बताया था, बाहरी नहीं।

इसमें क्या शक कि आक्रमण की कहानी राहुल जी कभी साबित नहीं कर सकते थे। लेकिन रामविलास जी भी वैदिक सभ्यता को हड़प्पा से पुरानी बताते हुए पुष्टि के लिए पुरातत्त्वज्ञों की तरफ देखते हुए चले गए- "गहराई से उत्खनन हो तो यह संभव है कि हड़प्पा सभ्यता के स्तरों के नीचे जलप्रलय वाली मिट्टी मिले।" इसके बावजूद अपनी अपुष्ट मान्यताओं को उन्होंने प्रकाशन के जरिए स्थापित करने के काबिल समझा।

'कामायनी' के कर्म सर्ग में एक पंक्ति आती है: "बन जाता सिद्धांत प्रथम, फिर पुष्टि हुआ करती है...।" अपनी मनचाही स्थापनाओं की भावी पुष्टि की राह हिंदी में कई लेखक देख गए हैं। कई अब भी देख रहे होंगे। ऐसे में यह अकारण नहीं है कि हिंदी की ऐसी परिश्रमजन्य कृतियों के हवाले पुरातत्त्व या इतिहास के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में परिशिष्ट की संदर्भ-सूची तक में जगह नहीं पाते।

सिंधु घाटी सभ्यता के मामले में ऋग्वेद को लेकर हिंदी का पांडित्य ही उलझा हो, ऐसी बात नहीं है। सिंधु सभ्यता पर आर्य- आक्रमण की अवधारणा पहले पहल १९२६ में बंगाली विद्वान रामप्रसाद चंद ने रखी थी। फिर १९३४ में गॉर्डन चाइल्ड ने कहा कि हड़प्पाई कंकाल "आक्रमणकारी" आर्यों के हो सकते हैं। लेकिन ज्यादा जोशो-खरोश से इसे कोई बारह साल बाद सर मार्टिन वीलर ने उठाया, सीधे-सीधे ऋग्वेद का हवाला देते हुए।

कोई सिद्ध पुरातत्त्वज्ञ इस तरह की स्थापना में शरीक हो, ऐसा पहले देखा नहीं गया था। किसी न्यायाधीश की तरह मूअनजो-दड़ो में मिले कंकालों का हवाला देते हुए वीलर ने लिखा: "व्यापक और सायास विनाश के लिए पारिस्थितिक साक्ष्य को देखते हुए इन्द्र मुलजिम ठहरते हैं।" इसके बाद तो 'पुरंदर' (दुर्ग-विनाशक) आर्य देव इन्द्र पर आरोपों का सिलसिला चल पड़ा। वामपंथी इतिहासकार इस अभियान में आगे रहे। दामोदर धर्मानंद कोसंबी ने ऋग्वेद से संदर्भ उठाते हुए यह भी कहा कि हमले के दौरान आर्यों ने हड़प्पाई बांध व्यवस्था को नष्ट कर दिया, जिससे खेत तबाह हो गए और शहर भी। हमले की यह परिकल्पना प्रत्यक्ष और पारिस्थितिक साक्ष्यों से निर्मूल साबित हुई। कंकालों के परीक्षण के बाद १९६४ में पुरातत्त्वज्ञ जॉर्ज डेलस ने- जिन्होंने मूअनजो-दड़ो में आखिरी खुदाई की- साबित किया कि 'हत्याकांड' निरा कल्पित है।

इसके दो साल बाद वीलर को अपनी किताब के नए संस्करण में यह मानना पड़ा कि इंद्र के 'हमले' वाले विवेचन में वे गंभीर नहीं रहे। हाल में पुरातत्त्ववेत्ता बृजबासी लाल और इंद्र देव के हवाले से यह बात सामने आई है कि हड़प्पा की रिपोर्ट में इंद्र की आक्रमण-कथा का समावेश वीलर की मौलिक 'सूझ' नहीं थी; हड़प्पा की खुदाई के दौरान वीएस अग्रवाल नामक एक कर्मचारी ने यह विचार उन्हें नजर किया था। जो हो, पुरातत्त्व इल्जाम के बाद भी मुलजिम इन्द्र कभी मुजरिम साबित नहीं हुए और 'मुकदमा' अंततः खारिज हो गया।

कहने का सबब इतना ही है कि साहित्य के वर्णनों की मदद से ऐतिहासिक स्थापनाओं में न लेखक कामयाब हो सकते हैं, न इतिहासकार और न ही पुरातत्त्ववेत्ता। इतिहास की गाड़ी को कल्पना के घोड़े लगाकर दलदल में ही फंसाया जा सकता है।

पुरातात्विक अन्वेषण में- और अंततः इतिहास लेखन में- साहित्य किस तरह मददगार हो सकता है, इस संबंध में मैंने स्तंभ में पहले माइसीनिया (यूनान) की खुदाई के सिलसिले में होमर के महाकाव्य (इलियड और ओडिसी) का जिक्र किया था। ऋग्वेद से भी जरूर ऐसे सूत्र हमें मिल सकते हैं जो खुदाई में यानी प्रत्यक्ष साक्ष्य खोजने में मदद करें। लेकिन अपने में होंगे वे महज सूत्र ही।

सरस्वती की खोज शायद कुछ इसी तरह शुरू हुई थी। लेकिन पता नहीं किस उतावलेपन में कुछ मार्क्सवादी, आर्यसमाजी और कुछ भाजपाई मत-मतांतर यहां एक हो गया और सिंधु-सारस्वत मान्यता की जैसे स्थापना ही हो गई। वाजपेयी सरकार में बहुत धूम से सरस्वती क्षेत्र की खुदाई आगे बढ़ी थी। उनके संस्कृति मंत्री जगमोहन ने- वैचारिक असहमति के बावजूद जिनकी मेहनत और लगन मुझे प्रभावित करती है- सरस्वती के उत्खनन के साथ सिंधु घाटी की खुदाई लायक कोई पंद्रह सौ जगहों की सूची बनाई थी। मुझे यह जानकर हैरत हुई कि मौजूदा प्रगतिशील गठबंधन की सरकार ने सरस्वती की खुदाई का वह सिलसिला बंद कर दिया है।

माना जाता है भारत में घग्घर और पाकिस्तान में हाकड़ा प्राचीन सरस्वती के अवरुद्ध रूप हैं। सरस्वती का जिक्र वेदों में ही नहीं है, लोकचित्त में भी गहरे पैठा हुआ है। लोकचित्त की मान्यताएं हमेशा निराधार नहीं होतीं। लेकिन साबित न हों, तब तक वे इतिहास भी नहीं कहलातीं। सरस्वती की धारणा की पुष्टि या निराकरण के लिए प्रत्यक्ष पुरातात्विक प्रमाण नहीं हैं। साहित्यिक या भाषिक प्रमाण काफी नहीं माने जाएंगे। भूगर्भ आखिर संस्कृति से पुरानी चीज है। आपको मालूम होगा कि कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद की सरस्वती और अवेस्ता में वर्णित अफगानिस्तान की हेलमण्ड नदी के हवालों में बहुत साम्य पाया है। जाहिर है, कई प्रयोजनों से सरस्वती क्षेत्र की खुदाई जरूरी है।

एक वाम-समर्थित सरकार में सरस्वती को हिंदू प्रतीक मानते हुए पुरातात्विक विषय-वस्तु स्वीकार कर लेना शायद टेढ़ा काम हो चला है। लेकिन खुदाई को टालने से उसी विचारधारा की जड़ें सींची जाएंगी, जिसके तहत सरस्वती को हकीकत मानकर इतिहास ही नहीं, पुरातत्व तक की अवैज्ञानिक पुनर्व्याख्या हो रही है। इस मामले में प्रो. राजेश कोछड़ का यह सुझाव वाजिब जान पड़ता है कि भारत और पाकिस्तान दोनों मिलकर सरस्वती के कथित क्षेत्र की खुदाई कराएं। यह खोज यूनेस्को की देखरेख में हो। यह सिर्फ इतिहास, वैदिक सभ्यता या सिंधु-हड़प्पा सभ्यता के काल निर्धारण का मामला नहीं है। इससे पुरातत्व, भूगर्भ और नदी विज्ञानों की प्रतिष्ठा भी जुड़ी हुई है। इन पर आंच न आए, ऐसा तभी संभव होगा जब खुले दिमाग से काम हो- हुकूमत में भी और विज्ञान में भी।

लगता है हमारे यहां पिछली-अगली हर सरकार जॉर्ज आरवेल की इस वक्रोक्ति के अपने-अपने मतलब निकाल कर चलती है: “जो अतीत पर नियंत्रण रखते हैं, भविष्य उन्हीं का है; अतीत उनका है जो वर्तमान पर नियंत्रण रखते हैं!”